ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 65-67
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिकीकरण

1. डॉ0 मिर्जा शहाब शाह
2. अलका कुशवाहा

1. प्रो. एवं अध्यक्ष– वाणिज्य विभाग, का. सु. साकेत पी.जी. कॉलेज, 2. शोध अध्येता– डॉ0 रा.म.लो. अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ0प्र0), भारत

Received-07.04.2023, Revised-12.04.2023, Accepted-18.04.2023 E-mail: kumarcomputers99@gmail.com

सारांश: *भारतीय अर्थव्यवस्था उद्योगों पर आधारित है और इसमें लघु उद्योगों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। देश के घरेलू उत्पाद तथा निर्यात से प्राप्त आय में लघु उद्योगों का महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है, साथ ही करोड़ों लोगों को रोजगार देकर वह सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में भी सहायता प्रदान करता है। लघु उद्योग क्षेत्र में कई औद्योगिक वर्ग शामिल किये जाते हैं, जिसमें मुख्य हैं– शिल्पकार, ग्रामीण व कुटीर उद्योग, महिला प्रधान उद्यम, सहायक औद्योगिक इकाइयाँ, लघु क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयाँ, लघु क्षेत्र सेवा उद्यम, अति लघु उद्यम आदि।*

वर्तमान वैश्विक औद्योगिक परिदृश्य में भले ही भारतीय उद्योग पिछड़ी अवस्था में हैं, लेकिन इनका अतीत अत्यन्त सुदृढ़ और गौरवपूर्ण रहा है। औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व भारत के परम्परागत उद्योग विकसित अवस्था में थे। इनकी ख्याति दूर–दूर तक फैली हुई थी। कताई–बुनाई उद्योग का विस्तार सम्पूर्ण देश में था। वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त भवन निर्माण, लकड़ी की नक्काशी, चीनी, नमक, नील व कागज उद्योग की ख्याति भी सम्पूर्ण विश्व में फैली हुई थी। सोने–चाँदी के आभूषण का निर्यात सम्पूर्ण विश्व में होता था। धातु पर आधारित कर्म उद्योग भी उन्नत अवस्था में थे।

कुंजीभूत शब्द– भारतीय अर्थव्यवस्था,रोजगार, सामाजिक उद्देश्यों, औद्योगिक वर्ग, शिल्पकार, ग्रामीण व कुटीर उद्योग, महिला प्रधान।

दक्षिण भारत में समुद्री नाव व जहाज बनाने के अनेक कारखाने लगे थे। इन जहाजों द्वारा भारतीय माल का निर्यात किया जाता था। भारत के परम्परागत उद्योगों से न केवल घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती थी वरन् इन उद्योगों में निर्मित वस्तुओं का भारी मात्रा में निर्यात भी किया जाता था। एशिया अफ्रीका और यूरोपीय देश भारतीय वस्तुओं के प्रमुख क्रेता देश थे। भारत से प्रमुख रूप से सूती वस्त्र, रेशमी वस्त्र, ऊनी वस्त्र, मसाले तथा कलात्मक वस्तुओं का निर्यात होता था। इससे बड़े पैमाने पर विदेशी मुद्रा प्राप्त होती थी।[1] सत्रहवीं व अठारहवीं शताब्दी को भारतीय उद्योगों का 'स्वर्णकाल' कहा जा सकता है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक भारत के परम्परागत उद्योग धीरे–धीरे नष्ट होने लगे। देश के राजा व नवाब जो परम्परागत उद्योगों के संरक्षक थे आपसी मन–मुटाव के कारण कमजोर होते गये और देश में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का साम्राज्य फैलने लगा। देशी राजाओं व नवाबों की शक्तियाँ क्षीण होने के कारण भारतीय उद्योगों की विदेशी व्यापारियों पर निर्भरता बढ़ती चली गयी। विदेशी व्यापारी अपनी शर्तों पर माल का क्रय करते थे और भारतीय कारीगरों का शोषण करते थे। इन लघु उद्योगों का अधिकांश लाभ विदेशी व्यापारियों को मिलने लगा। परिणामस्वरूप भारतीय कारीगर परम्परागत उद्योग बन्द करके अन्य काम करने लगे और इस प्रकार से भारतीय परम्परागत उद्योग नष्ट होते चले गये। यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने भी भारतीय परम्परागत उद्योगों को प्रभावित किया। औद्योगिक क्रान्ति के कारण यूरोपीय देशों में बड़ें पैमानें पर मशीनों द्वारा वस्तुओं का उत्पादन होने लगा। मशीनों के द्वारा निर्मित वस्तुएँ परम्परागत तरीके से निर्मित वस्तुओं की तुलना में सस्ती व अच्छी थी।[2] इस कारण मशीनों के द्वारा निर्मित वस्तुओं की माँग बढ़ने लगी और भारतीय परम्परागत उद्योग पिछड़ने लगे।

भारत में पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा के प्रभाव के कारण अनेक परम्परागत वस्तुओं की मांग देश के अन्दर भी कम होने लगी। विदेशी वस्तुओं का उपभोग बढ़ गया और उनका प्रयोग प्रतिष्ठा और गौरव का प्रतीक बन गया। इस प्रकार भारतीय वस्तुओं की माँग घटने लगी और फलस्वरूप उनसे सम्बन्धित उद्योग नष्ट होने लगे। सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् देश में ब्रिटिश शासन लागू हो गया। ब्रिटिश शासन ने देश के राजाओं और नवाबों के शासन को समाप्त कर दिया। ब्रिटिश सरकार की भी औद्योगिक नीति ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भाँति ही देश के उद्योगों के लिए निश्चित रूप से घातक थी। पहले जब इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति नहीं हुई थी तो भारतीय माल पर आयात शुल्क अधिक दर से लगाया गया ताँकि इंग्लैण्ड के उद्योगों को प्रतियोगिता का सामना न करना पड़ें।[3] जब औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् इंग्लैण्ड के उद्योग जमकर चलने लगे और उनकी प्रतियोगिता क्षमता बढ़ गयी तब ब्रिटिश सरकार मुक्त व्यापार की नीति पर चलने लगी। चूँकि परम्परागत उद्योगों में निर्मित माल मशीनों द्वारा निर्मित माल की तुलना में महँगा और किस्म में कम अच्छा था, इसलिए परम्परागत उद्योग प्रतियोगिता में पिछड़ते तथा समाप्त होते चले गये।

भारतीय उद्योगों के नष्ट होने के कारण– भारत के परम्परागत उद्योग अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक धीरे–धीरे नष्ट होने लगे। उद्योगों के उजड़ने की यह प्रक्रिया वस्त्र उद्योग से प्रारम्भ हुई और धीरे–धीरे अन्य उद्योग भी समाप्त होने लगे। इस प्रक्रिया के जोर पकड़ने से भारत औद्योगिक क्षेत्र में पिछड़ने लगा और अन्ततः औद्योगिक देश से एक कृषि प्रधान देश बन गया।[4] देश के परम्परागत उद्योगों के नष्ट होने के निम्नलिखित कारण थे :

1. देशी राजाओं व नवाबों का अन्त– देश के राजा और नवाब परम्परागत उद्योगों के रक्षक थे। कुशल कारीगरों को राजदरबारों में आश्रय मिलता था। कारीगर निश्चिंत होकर अपनी कला में निपुणता प्राप्त करते थे। इसके अतिरिक्त राजदरबारों में वस्तुओं की माँग भी होती थी। ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद देशी राजा और नवाबों का अन्त हो गया। इससे एक ओर तो परम्परागत उद्योगों का संरक्षण समाप्त हो गया वहीं दूसरी ओर माँग भी कम हो गयी। इस कारण भारतीय परम्परागत उद्योगों का पतन प्रारम्भ हो गया।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

2. विदेशी व्यापारियों द्वारा कारीगरों का शोषण– देशी शासकों की शक्ति क्षीण होने के कारण ब्रिटिश व्यापारी देश के कारीगरों से ठेके पर माल अपनी शर्तों पर बनवाने लगे। समय पर माल न बना पाने पर कारीगरों पर जुर्माना लगाया जाता था। इस शोषण और दुर्व्यवहार से परेशान होकर कारीगर अपना पुराना पेशा छोड़कर कृषि कार्य करने लगे। इस कारण से भी परम्परागत उद्योगों का पतन होने लगा।

3. मशीनों से प्रतियोगिता– औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप यूरोप में बड़े पैमाने पर मशीनों से तरह–तरह की वस्तुओं का निर्माण होने लगा। मशीनों द्वारा निर्मित वस्तुओं की गुणवत्ता अच्छी और कीमतें कम थी। जिसके कारण वस्तुएँ लोगों को आसानी से पसन्द आ जाती थी। परिवहन साधनों के विकास के कारण वस्तुएँ आसानी से देश में बिकने लगी। देश के परम्परागत उद्योगों में निर्मित वस्तुओं की कीमतें अधिक तथा गुणवत्ता में कम थी। इन कारणों से परम्परागत उद्योग प्रतियोगिता में पिछड़ते चले गये और तेजी से खत्म होते गये।

4. ब्रिटिश सरकार की घातक नीति– पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी और बाद में ब्रिटिश सरकार की दूषित व शोषणकारी नीति के कारण भी भारत के परम्परागत उद्योग नष्ट हो गये। ब्रिटिश सरकार की गलत नीतियों के कारण भारत एक कच्चे माल का निर्यातक देश बनकर रह गया। भारत से कच्चे माल को सस्ते में खरीदा जाता था जबकि निर्मित वस्तु को अधिक कीमतों पर बेचा जाता था। परम्परागत उद्योगों में निर्मित माल महंगा होने के कारण उसकी मांग कम होने लगी। इस कारण उद्योग धीरे–धीरे समाप्त होने लगे। अंग्रेजों के आने के पूर्व भारतीय परम्परागत उद्योग धन्धे विकसित अवस्था में थे, किन्तु 18वीं शताब्दी के अन्त से भारतीय परम्परागत उद्योगों के विनाश की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी तथा 19वीं शताब्दी के मध्य से भारतीय उद्योगों का पतन इतनी शीघ्रता के साथ हुआ कि भारतीय कारीगर अपने को नयी परिस्थितियों से समायोजित नहीं कर सके, परिणामस्वरूप उनको विवश होकर अपना पेशा छोड़ना पड़ा और इस प्रकार भारत की प्राचीन औद्योगिक परम्परा ही नष्ट हो गयी।

भारत में आधुनिक लघु उद्योगों का विकास– 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक तरीके के नयें–नयें उद्योग धन्धों की स्थापना प्रारम्भ हुई। वर्ष 1865 तक देश में 13 सूती वस्त्र की मिलें व 13 हजार किमी. लम्बी रेल लाइनें थी। भारत में सूती वस्त्र उद्योग व जूट मिलों के विकास ने औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत में आधुनिक उद्योग धन्धों का विकास प्रारम्भ हो गया था। वर्ष 1908 में सिंह भूमि (बिहार) में टाटा ने लोहे व इस्पात के कारखानें स्थापित किये, जिसमें 1913 में सर्वप्रथम इस्पात का उत्पादन हुआ। वर्ष 1905 के स्वदेशी आन्दोलन ने देश के औद्योगिक विकास को बहुत अधिक प्रोत्साहित किया। स्वदेशी आन्दोलन ने देशी वस्तुओं के प्रयोग पर जनता में जागृति लाने का सफल प्रयास किया। इस आन्दोलन की प्रेरणा से देश में परम्परागत उद्योगों के पुराने दौर की वापसी का सूत्रपात हुआ।[5]

प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व तक ब्रिटिश सरकार की ओर से देश में औद्योगिक विकास को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिला। प्रथम विश्वयुद्ध (1914) ने भारत में औद्योगिक विकास को सुनहरा अवसर प्रदान किया। युद्धकाल में शत्रु देशों से आयात बन्द हो गये और मित्र राष्ट्रो के आयात भी बहुत कम हो गये। परिणामस्वरूप देशी वस्तुओं की मांग में बेतहाशा वृद्धि हुई। युद्ध की विभीषिका ने भी लोगों की आँखें खोल दी कि आवश्यक वस्तुओं पर विदेशी निर्भरता हानिकारक है। भारत के औद्योगिक सर्वेक्षण के लिए वर्ष 1916 में ब्रिटिश सरकार ने औद्योगिक आयोग की नियुक्ति की। आयोग ने वर्ष 1918 में अपने प्रतिवेदन में इस बात पर बल दिया, कि उद्योग धन्धों के विकास में सरकार की सक्रिय भूमिका आवश्यक है। आयोग की सिफारिश पर प्रान्तों में प्रान्तीय उद्योग परिषदों की स्थापना की गयी। युद्धकाल में भारतीय उद्योगों ने बहुत मुनाफा कमाया। इससे औद्योगिक क्रियाशीलता अत्यधिक बढ़ गयी। परन्तु यह औद्योगिक अभिवृद्धि भी बहुत अल्पकालीन थी तथा वर्ष 1920 से व्यावसायिक मन्दी की दीर्घकालीन अवधि प्रारम्भ हुई जिसके परिणामस्वरूप भारतीय उद्योगों को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वर्ष 1929 की महान मन्दी ने भारतीय उद्योगों की कठिनाइयों को और बढ़ा दिया।[6] वर्ष 1936 के बाद उद्योगों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ।

वर्ष 1939 में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो जाने से पुनः क्रियाशीलता में वृद्धि हो गयी। ब्रिटिश सरकार द्वारा भी इस अवधि में औद्योगिक विकास के बहुत सारे प्रयास किये गये। वर्ष 1949 में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की स्थापना की गयी। कुशल श्रमिकों व विशेषज्ञों के अभाव को दूर करने के लिए इनके प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय भारत में युद्ध सामग्रियों और अस्त्रों के अनेक लघु उद्योग स्थापित हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पुनः भारतीय उद्योग के सामने अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयी। युद्धकाल में निरन्तर काम करते रहने के कारण अधिकांश कारखानों की मशीनें जीर्ण–शीर्ण हो गयी। युद्ध समाप्ति के बाद देश में राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक उन्माद, कालाबाजारी, विदेशी प्रतियोगिता, हड़ताल आदि के कारण भी भारतीय उद्योगों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। 15 अगस्त, 1947 में देश के विभाजन व साम्प्रदायिक उथल–पुथल से भी भारतीय उद्योगों की स्थिति काफी चिन्ताजनक हो गयी। विभाजन में भारत के औद्योगीकरण को विभिन्न प्रकार से प्रभावित किया है, जिससे औद्योगिक जगत में अनिश्चितता का वातावरण बन गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त नीति–निर्माताओं के समक्ष गरीबी व बेरोजगारी प्रमुख चुनौतियाँ थीं। देश में पूंजी का अभाव था। कम पूंजी निवेश के साथ भारी पैमाने पर रोजगार सृजन करने के लिए लघु उद्योगों के विकास को अनिवार्य समझा गया। वर्ष 1948 में एक औद्योगिक नीति घोषित की गयी। इस औद्योगिक नीति प्रस्ताव में लघु उद्योगों के विकास का समर्थन किया गया। नीति निर्माताओं ने निवेशित पूंजी की मात्रा, कार्यरत श्रमिकों की संख्या, प्रबन्ध व संगठन का स्वरूप व वार्षिक उत्पादन के आधार पर उद्योगों को तीन भागों–बड़े उद्योग, मध्यम उद्योग व लघु उद्योग में विभाजित किया। भारत के औद्योगिक मानचित्र में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं। इस

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

कारण से लघु उद्योग की परिभाषा भी बदलती रही है। वर्ष 1950 में 5 लाख रुपये की पूंजी निवेश वाले उद्योग लघु उद्योग की श्रेणी में आते थे। वर्ष 1960 में सरकार ने लघु उद्योग में पूंजी निवेश की सीमा 5 लाख रखी, किन्तु रोजगार की शर्त को हटा दिया। इस वर्ष लघु उद्योगों के एक नये वर्ग सहायक उद्योग को अस्तित्व में लाया गया। अप्रैल 1991 में लघु उद्योग में निवेश की सीमा 60 लाख रुपये कर दी गयी। अति लघु क्षेत्र में 5 लाख रुपये निर्धारित कर दिये गये। फरवरी 1997 में लघु उद्योगों में निवेश सीमा को 3 करोड़ रुपये कर दिया गया। परन्तु फरवरी 1999 में निवेश सीमा को पुनः 1 करोड़ रुपये कर दिया गया।[7] वर्ष 2006 में सूक्ष्म, लघु व मध्यम उद्यम विकास अधिनियम पारित किया गया। निर्माण क्षेत्र के लघु उद्योग में निवेश सीमा 5 करोड़ तथा सेवा क्षेत्र में 2 करोड़ रुपये कर दी गयी है।[8अ] लघु उद्योगों में प्रतियोगी क्षमता का विकास करने के लिए पूंजी निवेश की सीमा में वृद्धि करना आवश्यक हो गया था। मई 2020 में लघु उद्योगों में निवेश की अधिकतम सीमा बढ़ाकर 10 करोड़ रुपये कर दिया गया।[8ब]

लघु उद्योगों के लिए अब यह कहा जा रहा है कि चौथी औद्योगिक क्रान्ति आ गयी है। सरकार ने इस दिशा में ध्यान देना शुरू कर दिया है। सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग (एमएसएमई) प्रदेश की ताकत हैं। 96 लाख एमएसएमई इकाइयों ने प्रदेश के औद्योगिक विकास की नींव रखी है।

हथकरघा सम्मान समारोह में मुख्यमंत्री ने कहा कि बीते छह साल में सरकार ने एमएसएमई इकाइयों को प्रोत्साहित करने के साथ हस्तशिल्पियों, कारीगरों को प्रशिक्षित व सम्मानित किया है। यदि इन्हें पिछली सरकारों न सम्मान दिया होता तो प्रदेश बहुत आगे होता। मुख्यमंत्री ने कहा कि वैश्विक निवेशक सम्मेलन में 33.50 लाख करोड़ रुपये के निवेश करार से उत्तर–प्रदेश अब निवेश के सबसे बड़ें गंतव्य के रूप में उभरकर सामने आया है। कोरोना काल में देश ने प्रदेश की एमएसएमई की ताकत को देखा था। तब 40 लाख प्रवासी श्रमिकों को एमएसएमई इकाइयों में रोजगार दिया गया। प्रदेश के औद्योगिक विकास के लिए पहली प्राथमिकता है कि कानून का राज हो। दूसरी प्राथमिकता है कि शासन नेक नियती से काम करे, व्यापार की सुगमता हो। लेकिन सबसे आवश्यक है कि एमएसएमई का बेहतरीन कलस्टर है। लघु उद्योगों ने हमारी आत्मनिर्भरता में पूरा सहयोग दिया है, जिसके कारण आज हम जिन वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्यात कर रहे हैं उसमें बड़े उद्योगों की अपेक्षा लघु उद्योगों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अमरकोष, 2, 6, 113–119.
2. ईश्वरी प्रसाद शैलेन्द्र शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 195.
3. दत्त एवं सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ. 554.
4. अमरकोष, 2, 9.
5. चतुर्भुज मेमोरिया, भारतीय आर्थिक विकास, पृ. 85.
6. एम.एल. झिंगन, पृ. 503.
7. आम बजट 1999–2000 भारत सरकार।
8. अ. सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम विकास अधिनियम, 2006.
   ब. दैनिक जागरण, 22 मई, 2020, लघु उद्योगों में निवेश की सीमा बढ़ी।

*****